यदि पवनपुत्र हनुमान् रामचन्द्रजी का सन्देश लेकर सीताजी के पास लंका जा सकते हैं, तो सीताजी का सन्देश लेकर वायु का रामचन्द्रजी के पास आना और भी स्वाभाविक है। जिस कार्य को पुत्र कर सके, उसको पिता तो अवश्य ही कर सकता है। रामायण में भी हनुमान्जी का वर्णन करते हुए कहा गया है–'मारुतस्यौरस पुत्रो गमने चापि तत्सम'। अत हम यह कह सकते हैं कि वायु को दूत बनाने में कवि ने वाल्मीकि रामायण से ही प्रेरणा प्राप्त की है। दूतकार्य में वायु की उपयुक्तता का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं–

चन्द्रार्काद्या नियतगतयो नेतराशा श्रयन्ते
निश्चरञ्चारा अपि जलधरा नुद्यमानास्त्वयैव
इत्युज्झित्वा निरलसगते त्वामहं त्वा प्रपन्ना ॥९॥

चन्द्र, सूर्य और मेघ इत्यादि की अपेक्षा वायु के सब दिशाओं में जा सकने के कारण वायु को दूत बनाना उचित ही है।

अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग वर्णन में किसी नगरी अथवा ग्राम इत्यादि का कोई प्रसग नहीं आया है। अत मार्ग वर्णन में सरस स्थल कम ही हैं। फिर भी कवि ने स्थान-स्थान पर सरस कल्पना द्वारा मार्ग वर्णन नीरस नहीं होने दिया है। सर्वप्रथम वायु को यात्रा के लिये उत्साहित करते हुए कहा गया है–

त्वत्सम्पर्काच्चलति रुचिरे वारिजाना कदम्बे
गुञ्जन्मत्तभ्रमरमुखरे दीर्घिका वीक्षमाणा ।
मोदिष्यन्ते रसिकपुरुषा नृत्यगीताभिरामै-
र्मत्वा नूनं नटशिशुकुलै सकुला रगभूमिम् ॥१०॥

कवि ने यहा पर बडी चमत्कारपूर्ण कल्पना प्रस्तुत की है। फिर पम्पा सरोवर का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

पम्पा नाम प्रथितसरसी नातिदूरेऽथ याता
स्वच्छ साधोर्मन इव पयो बिभ्रती निश्चलञ्च ॥२७॥

सत्पुरुष के प्रसन्न और निश्चल मन की उपमा द्वारा सरोवर के जल की स्वच्छता और शान्तता का कवि ने बडा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। कवि ने जनस्थान वन को धर्मारण्य कहा है, क्योंकि वहा वृक्षों पर बैठे हुये शुक भी निरन्तर सुनते रहने से वेदों के स्वरों के ऐसे विशेषज्ञ हो गये हैं कि वृक्षों के नीचे वेदपाठ करने वाले ब्रह्मचारियों को भी वे उनकी अशुद्धिया बतलाते रहते हैं–

प्रज्ञाभ्यासात्कुलवटुवटून् सस्तरेऽधस्तरूणा
स कीराणामुपरि वसना व्यक्ततत्त्वस्सदोक्ति ।
यस्मिन् शास्ति स्खलितमसकृद्बोधयन्ती स्वरागा
शुद्धान् वृद्धप्रचलितगुणा गापयन्त्यन् वल्लकीर ॥३७॥

कई जगह कवि ने बड़ी सुन्दर उद्भावनायें पाठकों के समक्ष रक्खी हैं। सीताजी अपने आश्रम के रक्ताशोक वृक्षों को लेकर कहती हैं–

स्कन्धालम्बैर्धनुरिषुधिभी रक्षिभिर्लब्धसाम्यै
रक्ताशोकैर्दशशतकर प्रांगणाद्वारयद्भि ।
यन्नावारि द्विदशकरभुक्तेऽत्र नार्हन्ति गर्हाम्
पादाघातान्मम विटपिनस्ते हि सञ्जातरागा ॥३८॥

रक्ताशोक वृक्ष आश्रम में प्रहरी का कार्य करते थे। सहस्र-कर वाला सूर्य भी उनके कारण से आश्रम के प्रांगण में प्रवेश नहीं कर पाता था। फिर बीस भुजाओं वाले रावण को उन्होंने क्यों नहीं रोका। इस पर सीताजी कहती हैं कि मेरे पाद प्रहार करते रहने से उन्हें मुझ से द्वेष हो गया होगा।

रामचन्द्रजी के स्वरूप का वर्णन तो कवि ने ऐसा किया है कि पाठकों के हृदय में उनका चित्र सा खिंच जाता है। जटाधारी और तपस्वी राम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वे जटायें इस तरह प्रसन्नता से धारण किये हुये हैं मानों पिता की वनवास की आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हों–

तस्मिन्नद्रौ मरकत मणिच्छायमाच्छादयद्भिः
सम्बद्ध तत् तरणिकुल तेजसा द्योतयन्तम् ।
वन्या वृत्तिं सपदि ददतो दित्सिते राज्यभारे
शीर्षेणाज्ञां पितुरिव जटा मुकुटेन् वहन्तम् ॥३९॥

इसी तरह उनके वक्ष स्थल तथा मध्यभाग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उनका मध्यभाग बड़ा क्षीण तथा वक्ष स्थल बड़ा विस्तीर्ण है। संभव है कि ब्रह्मा ने उनके शरीर को मध्यभाग से पकड़ कर उनके अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य को सम्भाला हो। ऐसे सुन्दर और सुडौल शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण किये हुये वे बड़े सुन्दर लगते होंगे–

प्रत्यंगाना विरचनविधौ वेधसा वाममुष्टी
मध्येऽस्य दृढघृततयेवास्सक्षीणभावे ।
विस्तीर्णादुर्व्यधिवयवहनाध्यान्तनारयनस्मारे
यन्याकरपोचितनिवसनं वल्कलं सधयन्तम् ॥४०॥

आगे चलकर कवि ने रामचन्द्रजी की विरहावस्थाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। सीताजी कहती हैं कि मेरे वियोग में रामचन्द्रजी को निद्रा नहीं आती होगी, उनके नत्रों से निरन्तर अश्रुधारा बहती होगी तथा मेरी अनुपस्थिति में भी व मुझ से पूछते होंगे कि कहा चली गई हो—

तीव्रोत्तापद्रुततरमनोद्गारवद्दर्शयन्तम्
दृग्युग्म वा निमिषविमुख सान्द्रबाष्पायमाणम्।
मा मुक्त्वान्त करुणमिव धी प्रस्थिता क्वासि बाल
सोलीकन्तु व्यितमतितरामित्यल वा वदन्तम् ॥४३॥

इस श्लोक में चिन्ता, उन्माद और प्रलाप अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद सीताजी के वियोग में रामचन्द्रजी के मूर्च्छित हो जाने तथा इस दृश्य को देखकर विरह की अन्तिम दशा समझ कर लक्ष्मणजी के रोने का वर्णन किया गया है—

हाधिक् पुत्रेष्वनपगत शोकजिह्मभ्रमेतत्
ज्येष्ठस्नेहात् किमिह गुरुणा शिक्षितो राम एव।
इत्यश्रौघैरुपरि रुदता शान्तिमोहीकृत वा
शेषावस्थाभ्रमगुरुशुचा लक्ष्मणेनानुजेन ॥४५॥

विरह से व्याकुल होने के कारण, सभव है, रामचन्द्रजी आश्रम में स्थिर रूप से न बैठते हों, अत सीताजी प्रस्रवण गिरि (सुरुचिरगिरि) की विस्तृत अधित्यका में उनकी खोज करने के लिये कहती हैं —

तत्रालब्ध कथमपि भवन्! सानुजो राघवेन्द्र
सोऽन्वेष्टव्य सुरुचिरगिरेरायताधित्यकायाम्।
गोदावर्या प्रचलपयसा शीकरध्वानरम्या
या सायाह्नप्रचरणनिधौ भूमिरासीत् प्रिया न ॥४७॥

विरहावस्था में प्रेमीजन प्रेयसियों द्वारा सेवित स्थानों में घूमते फिरते ही हैं। इससे उनके मन की व्यथा कुछ शान्त हो जाती है।

रामचन्द्रजी की खोज के प्रसग में वन देवता से भी वायु के मिलने का उल्लेख किया गया है। वनदेवता के वर्णन में कवि ने उसकी सहृदयता और भावुकता का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। ऐसे ही एक स्थल पर कहा गया है—

य सेमन्तीतदरगलितस्वागभगाम्पयोभि
स्नेहाद्दृस्लालित इति मया प्रागपि वर्द्धितोऽस्मि।

सा पश्यन्ती गतरसतया शुष्कपुष्पाणि नूनं
बाष्पोत्सेकैश्चरति मदनुध्येयकमत्र तस्मिन् ॥४२॥

सीताजी ने अपने आश्रम के प्रांगण में सेमन्ती (सेंउती) का वृक्ष लगा रक्खा था और अपने कष्ट की परवाह न करके स्वयं अपने हाथों से ही उसे सींचती थीं। वे कहती हैं कि उनकी अनुपस्थिति में जल न मिलने से उस वृक्ष के सूखे हुए फूलों को देखकर वनदेवता अवश्य ही अपने आंसुओं से उसको सींचती होगी। मित्रता का कैसा सुन्दर आदर्श कवि ने यहा पर उपस्थित किया है।

आगे चल कर सीताजी कहती हैं कि मेरी अनुपस्थिति में कातर होते हुए तथा वीणा के स्वर को सुनकर एक दम पास आये हुए मेरे पालतू हिरण पर वन देवता वीणा छोड़कर हाथ फिराती हुई तुम्हें (वायु को) दिखाई पड़ेगी—

वीणातन्त्रीमधुररणिताहूतशारंग यूथा-
दायान्त वा नवपशुसभासक्तमिर्यद्दीनम्।
मुक्त्वा वीणामशिथिलगुणामभ्यसोपेत्य गात्रे
सस्नेह मत्कृतकतनय पाणिना व्यामृशन्तीम् ॥४३॥

वीणा बजाती हुई वनदेवता का सीताजी के पाले हुये हिरन के पास आने पर तारों को ढीला किये बिना ही वीणा का रख देना तथा हिरन पर अपना हाथ फेरना उसके भावुक हृदय का सजीव निदर्शन है। सखी के कृतक पुत्र को अपने पुत्रवत् समझना उसका स्नेहातिरेक प्रकट करता है।

वायु के द्वारा वनदेवता के लिये जो सन्देश कहलाया गया है उसमें सीताजी के हृदय के सच्चे भाव छिपे हुए हैं। वायु वनदेवता से सीताजी के सन्देश को सुनाते हुये कहता है—

भर्तुं प्राणैरनणु भजता सन्धिमात्माप्राणाम्
म्यप्राणानां बलवदग्निाद्यर्पत्यभर्तृ पीडाम्।
सम्भाव्यैषा वदति रुदती त्वा परिष्वंगपूर्वम्
तत्कार्यं ते लघु लघु यथा राक्षसान् सोऽभियाति ॥४६॥

रावण के द्वारा सीताजी के प्राणों को कष्ट दिये जाने पर रामचन्द्रजी के भी प्राणों के कष्ट की सम्भावना कर सीताजी का रोना नितान्त स्वाभाविक है। भारतीय दाम्पत्यसम्बन्ध में पति-पत्नी की अनन्यता तो बतलाई ही गई है। इसके अतिरिक्त इस सन्देश में वे ही बातें कही गई हैं, जिन्हें सीताजी रामचन्द्रजी से कहना तो चाहतीं, लेकिन सकोचवश शायद कह नहीं पातीं।

आगे चल कर वन और पर्वतों में कहीं हीं रामचन्द्रजी के मिल जाने पर उन्हें

सन्देश सुनाने की वायु से प्रार्थना की गई है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी की दशा का वर्णन किया गया है—

लङ्कामम्भोनिधिपरिगतां राक्षसेशेन नीता
जीवत्येषा तव सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती ।
पातिव्रत्यं वहति च दशाशेषतां न्वस्य नूनं
स्पर्शाद्ध्वंस्यद्दह पयसम्निन्नुल्मुकाद्दीपिकेव ॥७३॥

रावण के स्पर्श से ही सीताजी के निधन की सम्भावना में उनके दृढ़ पातिव्रत्य की गूढ़ व्यञ्जना की गई है। 'जीवत्येषा तव सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती' इस पंक्ति में सीताजी के प्रेम तथा वियोग-दुःख को एक साथ बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। उनकी विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

सा सिञ्चन्ती नयनसलिलैर्जाह्नुमूलं कदाचित्
त्वां पश्यन्ती नखरलिखितं कर्हिचिद्भूमिपृष्ठे ।
जातु व्यक्तं ललसद इत्याद्यदोप लपन्ती
दुःस्था कालं नयति रजसि व्यालुठन्ती कथंचित् ॥७४॥

इस पद्य में प्रिय विरह में सीताजी के रोने, प्रिय का चित्र बनाने, असम्बद्ध प्रलाप करने तथा धूल में लोटने इत्यादि विरह-चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

इसके बाद सीताजी का मुख्य सन्देश प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम सीताजी ने रामचन्द्रजी के पाद-पद्म को प्रणाम किया है—

तस्मै नाथाद्भुतविलसितं पादपद्मं नमामि ॥७८॥

पतिव्रता स्त्री का अपने पति के चरणों को नमस्कार करना उचित ही है। फिर सीताजी ने अपनी प्रार्थना बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से रामचन्द्रजी के सामने रक्खी है। वे कहती हैं—

रज्जुं कूपाद्घटमिव भुवं दुर्गतेर्दीर्घतीनम्
स्वर्गद्वारं मनुजमिव च स्त्रीयसत्कर्मधर्मं ।
उद्धृत्य त्वां नयतु झटिति स्नेहमारोऽतिवृद्ध
दुःखाम्भोधेर्जनन्निमिति प्रार्थनेयं हताशा ॥८०॥

प्रार्थना को सरल बनाने के लिये कवि ने कैसी उपयुक्त उपमायें दी हैं। आगे चलकर अपने चित्त की दशा का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं—

विन्यद्धिम्यत् कथचिदिव मृतं गूढमास्ते कदाचिद्
यानि स्थैर्यं न स्वरगुणाद्धिक्लयन्त्यत्र पतत् ।

तीर्त्वाम्भोधिं कश्चिदपि निजोदन्तमावेदयिष्यत्
त्वत्पादान्तं द्रुतमहह मे याति किं कार्यमूढम् ॥८५॥

प्रिय के वियोग में चित्त का डरते रहना, व्याकुल होना, अस्थिर रहना तथा बार बार प्रिय के चरणों में पहुचने की इच्छा करना स्वाभाविक ही है।

स्वप्नावस्था में कभी कभी प्रिय के दर्शन हो जाते हैं, इसलिये सीताजी सोने की बहुत चेष्टा करती हैं, लेकिन राक्षसों के भय से उन्हें नींद नहीं आती है—

निद्रामल्पामपि गुरुतरोद्भ्रामयत्येव भीति
स्वप्नोपायैः कथमपि भवत्सङ्गमापादयित्रीम् ॥८६॥

रामचन्द्रजी से सन्देश सुनाने के बाद लक्ष्मणजी के लिये भी कुछ सन्देश दिया गया है। इस सन्देश में लक्ष्मणजी की बड़ी भावपूर्ण प्रार्थना और प्रशंसा की गई है। सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

हा कारुण्यामृतजलनिधे हा महारण्यबन्धो
हा रक्षिन् हा सुविनयरसामृष्टगात्रान्तरात्मन् ।
हा मत्कर्मानिगणिततनूपात हा पक्षपातिन्-
क्वेदानीं ते मदुपरि दयास्नेहदाक्षिण्ययत्न ॥८८॥

अपने हृदय के भावों को सीताजी ने इस पद्य में बड़ी भावप्रवणता के साथ व्यक्त किया है।

सीताजी लक्ष्मणजी से फिर कहती हैं कि तुम पहिले तो मुझ पर बड़ी दया रखते थे, लेकिन आश्चर्य है आजकल तुम्हारा मन न जाने क्यों व्याकुल नहीं होता है—

सन्तप्तायां मयि पथि भृशं मन्थरत्वं तवासीद्
बाष्पोद्रेकस्तव मयि वने पाकभूमाकुलायाम् ।
स्थैर्यं चेतोऽलभत रजनौ मत्सुषुप्तौ तवैत-
च्चित्रमस्यस्यां विपदि मम यज्जन्मनो नाकुलं स्यात् ॥८९॥

अन्त में सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

मामुद्धर्तुं कुरु परिकरं वैमुखीं मा स्म यासीः ॥९१॥

फिर दोनों भाइयों को सम्बोधन करके कहा गया है—

सप्रत्याशं पुनरुपगमे जीवितं धारयन्त्याम्
पर्यन्तान्तं मयि तव युवां निःस्पृहौ तन्न योग्यम् ।

चैलं लग्नानलमिव समुत्सृज्य सद्योऽग्निपद्याम्
सज्जा पद्व्यतिकरमिदं जीवितं निर्वृता स्याम् ॥९३॥

इस कथन में सीताजी के विषाद और नैराश्य की पराकाष्ठा छिपी हुई है। अग्रिम श्लोक में सीताजी फिर कहती हैं कि इस जन्म में यदि तुम न मिले तो अगले जन्म में ही तुम्हारा साथ हो जाये। बस, मेरी यही प्रार्थना है—

एवं तावत् खलु हितकरीमाशिषं सम्प्रशासे
लभ्येऽन्यस्मिन् जनुषि च भवद्वन्धुभार्यो लभेय।
देहं लब्ध्वा पुनरपि यथा पद्मिनी शैशिरान्ते
तत् सौहार्दं दिनमिहिरयोः पौर्वमेकान्तमेति ॥९४॥

जिस तरह पद्मिनी शिशिर ऋतु के बाद सूर्य और दिन के अपने पूर्व प्रेम को पुनः पा जाती है, इसी तरह सीताजी को भी यह आशा है कि इस जन्म के बाद अवश्य ही इन्हें राम और लक्ष्मण का पूर्व प्रेम प्राप्त हो जाये। सीताजी की इस आशा में भारतीय नारी के चिरन्तन और शाश्वत पति-प्रेम का आदर्श छिपा हुआ है।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के सीताजी को छोड़ कर अयोध्या चले जाने की सम्भावना लेकर अपनी बहिनों के प्रति भी सीताजी ने निम्नलिखित सन्देश उनके द्वारा दिया है—

आकौमारं जनकभवने यौवने भर्तृगेहे ऽ
प्यस्तक्रोधप्रसरविधिना लम्भितैकावरोधा।
सर्वा एव क्षणमपि वयं नान्वभूमाक्षितुःखम्
आनैवाद्यप्रभृति खलु वः स्वप्नमात्रावलोक्या ॥९६॥

अपनी बहिनों के लिये दिये गये इस सन्देश में सीताजी के भगिनी प्रेम की कैसी अटूट स्मृति छिपी हुई है।

सन्देश सुनाने के बाद संशयनिवारण के लिये सीताजी ने वायु को एक प्रत्यभिज्ञान भी दिया है—

केशान्यस्तातिसुरभिरजोगन्धमीशाभिनन्द्यम्
गन्धोद्वाहिन्! धर च परमं प्रत्यभिज्ञानमेहि ॥९७॥

गन्धोद्वाही वायु के लिये प्रत्यभिज्ञानस्वरूप सुगन्ध का ले आना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। अन्त में वायु के प्रति—

पन्थानो मे प्रतिगति शिवाः सन्त्वितो गच्छतस्ते
मूर्तावस्था त्वयि कृतसदासन्निधानोऽस्तमूर्तिः।

अश्वभ्रान्ति तव परिहरेत्—इत्यादि ॥१००॥

मंगल-कामना से काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य के पर्यालोचनपर्यन्त अनुशीलन से प्रत्यक्ष है कि यह काव्य एक सुन्दर सन्देश काव्य है। विप्रलम्भ शृंगार होते हुये भी काव्य में संयमसे काम लिया गया है। सीता और राम जैसे धीर और उत्तम नायकों के प्रसंग में होना भी यही चाहिये था। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे होने पर भी मेघदूत की पदावली अथवा भावों का प्रभाव काव्य में प्राय नहीं ही है। केवल प्रक्रिया का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है। भाषा की दृष्टि से काव्य कुछ दुरूह ही है। माधुर्य तथा प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता है और गौडी रीति का ही काव्य में अनुसरण किया गया है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक पर्याप्त होगा—

चञ्चच्चञ्चुक्षतशतगलद्रक्तधाराकुलाङ्ग
पक्षक्षेपप्रखरनखराकर्षणैर्नु ससख।
मद्भाग्यान्तात्स्तुतयदपि स (रावण) प्राप्तधी शौर्यचण्ड
स्तद्दृष्टि विद्धो दलितमदन तत्र त सञ्जिगाय ॥२६॥

रावण और जटायु के युद्ध का इस श्लोक में वर्णन किया गया है।

कवि ने कहीं कहीं काव्य में नैतिकता तथा सच्चाई से भरे हुए सुन्दर वाक्यों का भी समावेश कर दिया है। यथा—

(१) स्वार्थेऽत्यन्य त्यजति ननु य प्राकृतो ह्येष लोक ॥१४॥

(२) नोपकृष्ट इयनूनमृषिभिर्नागसा जीरमूलम् ॥१७॥

(३) प्रायो धर्मात् स्खलति हि जन सर्वसम्पद्व्यपाये ॥२४॥

(४) नानिर्णीति झटिति हि जनो याति वैमुख्यमर्थे
नापरयात प्रथमपति या साहसी पौरुषाढ्य ॥६६॥

कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर और प्रभावपूर्ण उपमायें भी कवि ने दी हैं। वैसे ही एक स्थल पर राक्षसों से घिरी हुई सीताजी के लिए-इयमाक्रान्तामिव कचार्यीम् ॥२०॥ कहा गया है। वनदेवता के वर्णन में दी गई उपमायें भी दर्शनीय हैं—

तत्रोद्देशे वसति नियतं देवता तद्वनाना
मूर्तेरन्तहागत इव मणिर्देहिनीवानुकम्पा।
यद्वायुष्मन् स्थितिमविदिना तत्त्वतो ज्ञातुकाम-
स्ता मीमासा बुध इव तपो ऽद्यो संश्रयेथा ॥४०॥

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि यह काव्य संस्कृत के सन्देश काव्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रामायण की कथावस्तु को अपनी कल्पना से कवि ने और भी अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। प्रसंगान्तर में आई हुई काव्य की यह पंक्तियाँ—

नोपेक्षेथा कुरु परिचयं गंगया सङ्गमात् किम्
नो माहात्म्यं समधिकतरं पावनोऽप्यद्य धरेति ॥२३॥

यदि काव्य के सम्बन्ध में मान ली जायें तो अनुचित न होगा। रामायण रूपी समुद्र में यह काव्य गंगा की तरह ही मिल रहा है। साहित्यिक अभिरुचि के पाठकों के साथ-साथ भक्ति प्रवण पाठकों के लिये भी यह काव्य सर्वथा उपादेय है।